12 अगस्त से पूर्व प्रकाशित न करें

Website : www.eklavya.in

भुगतान मनीऑर्डर से या
एकलव्य के नाम ड्राफ्ट से करें
कतरन भी ज़रूर भेजें

स्रोत
विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

संपादन एवं संचालन
एकलव्य, ई-10 शंकर नगर,
बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल - 462 016
फोन : (0755) 2550976, 2671017
ई-मेल : srote@eklavya.in

विज्ञान समाचार

पौधों का बारकोड

खबरों से पता चलता है कि जीव वैज्ञानिक समुदाय जल्दी ही दुनिया भर की वनस्पति प्रजातियों के लिए एक बारकोड निर्धारित करने पर सहमत हो जाएगा। बारकोड वही चीज़ है जिससे हर वस्तु को एक अनूठी पहचान प्रदान की जाती है। यही प्रक्रिया वनस्पति जगत के बारे में करना आसान काम नहीं है।

इस तरह के बारकोड की ज़रूरत प्रजातियों की स्पष्ट पहचान के लिए है। खास तौर से जंतु अंगों की उत्पत्ति को पहचानने और संरक्षण के प्रयासों में इसका काफी महत्व होगा। मगर सवाल यह है कि वनस्पति जिनेटिक श्रृंखला में से किस हिस्से का उपयोग यह बारकोड बनाने में किया जाए ताकि हर प्रजाति को एकदम अलग पहचानने योग्य कोड मिले। कई समूह इस दिशा में प्रयास करते रहे हैं। वैसे जंतुओं के बारे में ऐसे बारकोड पर सहमति हो भी चुकी है।

अब लग रहा है कि 52 शोधकर्ताओं द्वारा लिखे गए एक शोध पत्र में सुझाई गई बारकोड प्रणाली पर सहमति बनने को है। यह समूह *इंटरनेशनल कंसॉर्शियम फॉर दी बारकोड ऑफ लाइफ* (सीबीओएल) के पादप कार्यकारी समूह के तहत कार्यरत है। इस शोध पत्र में सुझाया गया है कि बारकोड में जिनेटिक श्रृंखला के दो हिस्सों को शामिल किया जाए (ये हिस्से हैं rbcL और matK)। समूह का मत है कि इन दो हिस्सों का उपयोग करके जिन प्रजातियों की जांच की गई उनमें से 72 प्रतिशत को अनूठी पहचान प्राप्त हुई जबकि शेष प्रजातियों के मामले में सही प्रजाति समूह पहचाने जा सके।

अब यह प्रणाली सीबीओएल के पादप कार्यकारी समूह के समक्ष प्रस्तुत की जाएगी जो इसकी समीक्षा की व्यवस्था करेगा। समीक्षा के बाद जल्दी ही अंतिम निर्णय होने की उम्मीद है। वैसे कुछ अन्य समूहों ने अन्य सुझाव भी दिए हैं और सबकी तुलना के बाद ही कोई फैसला होगा। उदाहरण के लिए, कनाडा में एक समूह काम कर रहा है जिसका उद्देश्य है कि सारे युकेरियोट्स के लिए एक बारकोड विकसित किया जाए। युकेरियोट्स का मतलब होता है वे सारे जीव जिनकी कोशिका में एक सुस्पष्ट केंद्रक पाया जाता है। शेष जीव

प्रोकेरियोट्स कहलाते हैं। इसी प्रकार का एक समूह है *इन्टरनेशनल बारकोड ऑफ लाइफ* (आईबोल)।

वैसे एक बात साफ है कि जीव वैज्ञानिकों का अंतर्राष्ट्रीय समुदाय बारकोड के बारे में जल्द से जल्द किसी सहमति पर पहुंचने को उत्सुक है। इसके अभाव में शोध कार्य व संरक्षण में कई दिक्कतें आ रही हैं। लिहाज़ा उम्मीद की जानी चाहिए कि निकट भविष्य में हर वनस्पति प्रजाति को एक अनूठे बारकोड से पहचाना जाएगा। एक सुझाव यह भी आया है कि सूक्ष्मजीवों के संदर्भ में भी इस तरह के प्रयास ज़रूरी हैं क्योंकि उनमें प्रजाति पहचान एक मुश्किल काम है। ***(स्रोत फीचर्स)***

स्रोत में छपे लेखों के विचार लेखकों के हैं। एकलव्य या एन.सी.एस.टी.सी. का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

12 अगस्त से पूर्व प्रकाशित न करें

Website : www.eklavya.in

स्रोत
विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

भुगतान मनीऑर्डर से या
एकलव्य के नाम ड्राफ्ट से करें
कतरन भी ज़रूर भेजें

संपादन एवं संचालन
एकलव्य, ई-10 शंकर नगर,
बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल - 462 016
फोन : (0755) 2550976, 2671017
ई-मेल : srote@eklavya.in

विज्ञान समाचार

जीन उपचार में एक नया कदम

यदि किसी व्यक्ति को कोई जिनेटिक रोग है, तो वैज्ञानिकों के हाथ में उसके उपचार का एक नया औज़ार आने को है। कोशिका में जिनेटिक गड़बड़ी को दुरुस्त करके उस कोशिका को स्टेम कोशिका में तबदील किया जा सकता है। स्टेम कोशिकाएं हमारे शरीर की वे कोशिकाएं होती हैं जो विभाजित होकर नई कोशिकाएं बनाने की क्षमता रखती हैं। जब जिनेटिक गड़बड़ी से मुक्त स्टेम कोशिकाएं होंगी तो वे विभाजित होकर स्वस्थ कोशिकाओं का निर्माण करेंगी।

इस संदर्भ में कैलीफोर्निया के साल्क इंस्टीट्यूट के युआन कार्लोस इज़पिसुआ बेलमोन्ट ने ऐसे कुछ व्यक्तियों पर प्रयोग किए हैं जो एक खास तरह के एनीमिया - फान्कोनी एनीमिया - से पीड़ित थे। यह अस्थि मज्जा का एक रोग होता है। बेलमोन्ट और उनके साथियों ने ऐसे व्यक्तियों के शरीर से फाइब्रोब्लास्ट नामक कोशिकाएं प्राप्त कीं। गौरतलब है कि फाइब्रोब्लास्ट कोशिकाएं शरीर में काफी संख्या में पाई जाती हैं जबकि स्टेम कोशिकाएं बहुत कम होती हैं। एक वायरस की मदद से इन फाइब्रोब्लास्ट कोशिकाओं में से एनीमिया पैदा करने वाला जीन हटाकर उसकी जगह सही जीन जोड़ दिया गया। फिर एक और वायरस की मदद से इन परिवर्तित फाइब्रोब्लास्ट को स्टेम कोशिकाओं में तबदील किया गया। इसके लिए इन कोशिकाओं में वह जीन प्रविष्ट कराया गया जो इन्हें फिर से स्टेम कोशिका के स्तर पर ले जाता है।

इन नई स्टेम कोशिकाओं को 'प्रेरित बहुसक्षम कोशिकाएं' कहा जाता है। इन कोशिकाओं में विभाजन की प्रक्रिया चली और इन्होंने अस्थि मज्जा की स्वस्थ स्टेम कोशिकाओं को जन्म दिया।

इस तकनीक में एक खामी यह है कि जब कोशिकाओं को इस तरह से पुनः बहुसक्षम बनाया जाता है तो खतरा यह रहता है कि वे अनियंत्रित विभाजन करके कैंसर का रूप ले लेंगी। यदि इस तकनीक को सुरक्षित बनाया जा सके तो जिनेटिक उपचार में काफी तरक्की होने की संभावना है। इसकी मदद से स्वस्थ कोशिकाओं का एक स्रोत मिलेगा जो व्यक्ति विशेष के लिए बनी होंगी और व्यक्ति का प्रतिरक्षा तंत्र उन्हें अस्वीकार नहीं करेगा। ***(स्रोत फीचर्स)***

राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद् (डी.एस.टी.) की एक परियोजना

स्रोत में छपे लेखों के विचार लेखकों के हैं। एकलव्य या एन.सी.एस.टी.सी. का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

12 अगस्त से पूर्व प्रकाशित न करें

Website : www.eklavya.in

स्रोत
विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

भुगतान मनीऑर्डर से या
एकलव्य के नाम ड्राफ्ट से करें
कतरन भी ज़रूर भेजें

संपादन एवं संचालन
एकलव्य, ई-10 शंकर नगर,
बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल - 462 016
फोन : (0755) 2550976, 2671017
ई-मेल : srote@eklavya.in

विज्ञान समाचार

समय का भान और मनोवैज्ञानिक समस्याएं

कुछ बच्चों में एक दिक्कत होती है - वे बहुत सक्रिय होते हैं और किसी एक चीज़ पर देर तक एकाग्रता नहीं रख पाते। इसे अटेंशन डेफिसिट हाइपरएक्टिविटी डिसऑर्डर (एडीएचडी) नाम दिया गया है। वैसे इस बात को लेकर मतभेद हैं कि क्या वास्तव में ऐसा कोई 'डिसऑर्डर' होता भी है या नहीं हालांकि कई देशों में इसके लिए दवा भी दी जाती है। बहरहाल यदि मान लिया जाए कि ऐसी किसी गड़बड़ी का अस्तित्व है तो इसका कारण क्या है।

कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि इसके पीछे मूल कारण यह है कि कई व्यक्तियों में समय का सही भान नहीं होता। जैसे लंदन के किंग्स कॉलेज की कात्या रुबिया बताती हैं कि इस तरह के बच्चों को समय का छोटा-सा अंतराल भी बहुत लंबा लगता है। दरअसल कई मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि समय का सही भान न होना बहुत सारी मनोवैज्ञानिक समस्याओं के मूल में है।

एक अनुमान के मुताबिक दुनिया भर में करीब 5 प्रतिशत बच्चे एडीएचडी से पीड़ित हैं। वैसे यह कहना ज़्यादा सही होगा 5 प्रतिशत बच्चों के माता-पिता इससे पीड़ित हैं। एडीएचडी से सम्बंधित अध्ययनों में आम तौर पर इस बात पर ध्यान केंद्रित किया जाता है कि ऐसे व्यक्तियों की एकाग्रता की अवधि बहुत कम होती है और उनका व्यवहार आवेगों में होता है। ऐसा बताते हैं कि ऐसा मस्तिष्क में डोपामीन नामक रसायन की कमी की वजह से होता है।

रुबिया व उनके साथियों ने एडीएचडी पीड़ित कुछ बच्चों का अध्ययन करने पर पाया कि उनके दिमाग के उन हिस्सों में सक्रियता बहुत कम होती है जो समय का अनुमान लगाने का काम करते हैं। यह भी देखा गया कि ऐसे बच्चों को जब टीवी पर कुछ देर के लिए कुछ आकृतियां दिखाई गईं और बाद में पूछा गया कि ये पर्दे पर लगभग कितने समय तक दिखाई गई थीं तो वे इसका सही अंदाज़ नहीं लगा पाए।

तो रुबिया के दल का मत है कि ये बच्चे थोड़ी देर भी कहीं बैठते हैं, तो इन्हें लगने लगता है कि बहुत देर से बैठे हैं, ये जल्दी ही ऊब जाते हैं। इसी वजह से ये बार-बार अचानक सक्रिय हो जाते हैं।

इस तरह के अध्ययनों के आधार पर कुछ मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अधिकांश मानसिक गड़बड़ियों में बाह्य वस्तुनिष्ठ समय और व्यक्ति के व्यक्तिनिष्ठ समय के बीच तालमेल का अभाव होता है। ***(स्रोत फीचर्स)***

राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद् (डी.एस.टी.) की एक परियोजना

स्रोत में छपे लेखों के विचार लेखकों के हैं। एकलव्य या एन.सी.एस.टी.सी. का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

12 अगस्त से पूर्व प्रकाशित न करें

Website : www.eklavya.in

स्रोत
विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

भुगतान मनीऑर्डर से या
एकलव्य के नाम ड्राफ्ट से करें
कतरन भी ज़रूर भेजें

संपादन एवं संचालन
एकलव्य, ई-10 शंकर नगर,
बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल - 462 016
फोन : (0755) 2550976, 2671017
ई-मेल : srote@eklavya.in

विज्ञान समाचार

शोध पत्रिकाएं क्या कंपनियों के विज्ञापन हैं?

चिकित्सा शोध पत्रिकाओं में दवा कंपनियों के विज्ञापन छपते हैं, यह तो कोई नई बात नहीं है। दवा कंपनियां अपनी दवाइयों की बिक्री बढ़ाने के लिए तमाम किस्म के हथकंडे अपनाती हैं, यह भी कोई हैरत की बात नहीं लगती। यह बात भी काफी समय से पता है कि कुछ शोध पत्रों के लेखकों में प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों या डॉक्टरों के नाम होते हैं मगर वास्तविक लेखक दवा कंपनियों के कर्मचारी होते हैं। मगर अब एक सर्वथा नया तरीका उजागर हुआ जिसे देखकर दवा कंपनियों के प्रबल समर्थक भी हक्का बक्का हैं।

मामला विशाल दवा कंपनी मर्क से सम्बंधित है। ऑस्ट्रेलिया में मर्क की सहायक कंपनी ने एक्सपर्टा मेडिका के एक विभाग एल्सेवियर के साथ एक समझौता किया। समझौता यह था कि एल्सेवियर एक ऐसी पत्रिका प्रकाशित करेगी जो किसी शोध पत्रिका जैसी नज़र आए। इसका कलेवर ऐसा होगा जैसे कि इसमें प्रकाशित लेख निष्पक्ष रेफरियों द्वारा मूल्यांकन के बाद स्वीकार किए जाते हैं। मगर वास्तव में इस पत्रिका में मात्र ऐसे लेखों को पुनः मुद्रित किया जाता था जो मर्क के अनुकूल होते थे।

इस पत्रिका का नाम *ऑस्ट्रेलियन जर्नल ऑफ बोन एण्ड जॉइन्ट मेडिसिन* था और यह दुनिया भर के 20,000 डॉक्टरों को भेजी जाती थी। सबसे रोचक बात थी कि इस पत्रिका में आप प्रकाशन हेतु आलेख प्रस्तुत नहीं कर सकते थे। इस बात का भी कहीं खुलासा नहीं किया गया था कि यह पत्रिका मर्क द्वारा स्थापित व संचालित है। कई संपादक बताते हैं कि बहुत पैनी निगाह ही यह देख सकती थी कि यह पत्रिका मार्केटिंग का एक औज़ार थी। हो सकता है कि यह पत्रिका एक इन्तहा हो गई थी मगर इस तरह की चीज़ें काफी समय से चलती रही हैं। जैसे कई शोध पत्रिकाओं के विशेष सप्लीमेंट्स दवा कंपनियों द्वारा प्रायोजित होते हैं। दवा कंपनियां न सिर्फ इन्हें प्रायोजित करती हैं बल्कि इन्हें तैयार करने में 'मदद' भी करती हैं।

कई वैज्ञानिकों ने मांग की है कि इस प्रक्रिया पर रोक लगनी चाहिए और पत्रिकाओं में शोध के परिणामों और विज्ञापनों के बीच स्पष्ट भेद नज़र आना चाहिए। ***(स्रोत फीचर्स)***

राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद् (डी.एस.टी.) की एक परियोजना

स्रोत में छपे लेखों के विचार लेखकों के हैं। एकलव्य या एन.सी.एस.टी.सी. का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

12 अगस्त से पूर्व प्रकाशित न करें

Website : www.eklavya.in

भुगतान मनीऑर्डर से या
एकलव्य के नाम ड्राफ्ट से करें
कतरन भी ज़रूर भेजें

स्रोत
विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

संपादन एवं संचालन
एकलव्य, ई-10 शंकर नगर,
बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल - 462 016
फोन : (0755) 2550976, 2671017
ई-मेल : srote@eklavya.in

विज्ञान समाचार

रक्ताधान क्या जानलेवा भी हो सकता है?

हाल ही में किए गए अध्ययन दर्शाते हैं कि रक्ताधान (ब्लड ट्रांसफ्यूज़न) दिल के दौरे और यहां तक कि मृत्यु की आशंका को भी बढ़ा सकता है। दो अलग-अलग समूह इस बात की पड़ताल कर रहे हैं कि ऐसा क्यों होता है और इससे कैसे बचा जा सकता है।

इस बात में कोई संदेह नहीं कि रक्ताधान ने अनेक जानें बचाई हैं लेकिन पिछले पांच सालों में किए गए अध्ययनों से यह बात सामने आई है कि रक्ताधान की मदद लेने वाले मरीज़ों में हार्ट-अटैक, हार्ट-फैल्यूअर, स्ट्रोक और मृत्यु की आशंका भी बढ़ जाती है।

अमरीका में प्रति वर्ष48 लाख मरीज़ों को 140 लाख इकाई रक्त वितरित किया जाता है। पूरी प्रक्रिया का कड़ाई से निरीक्षण किया जाता है, ताकि किसी भी प्रकार के संक्रमण से बचा जा सके। मगर वर्ष 2004 में दिल के मरीज़ों पर किए गए एक अध्ययन के अनुसार रक्ताधान के 30 दिन के भीतर मरने वाले मरीज़ों की संख्या सामान्य से दुगनी थी और हार्ट-अटैक से मरने वाले सामान्य से 3 गुना अधिक थे।

रक्ताधान का मूल उद्देश्य शरीर के ऊतकों को अधिक से अधिक ऑक्सीजन पहुंचाना है मगर शोधकर्ताओं ने पाया है कि इसके बाद कभी-कभी ऊतकों में ऑक्सीजन की कमी भी हो जाती है। शोधकर्ता यह जानना चाहते हैं कि ऐसा उल्टा असर क्यों होता है।

अमरीका में लाल रक्त कोशिकाओं को 4 डिग्री सेल्सियस पर अधिकतम 42 दिन ही रखा जा सकता है। प्रमाण दर्शाते हैं कि खून को जितने ज़्यादा दिनों तक रखा जाता है, परिणाम उतने ही बुरे होते हैं। ड्यूक विश्वविद्यालय की दो अलग-अलग टीमें इस बात का कारण पता लगाने में जुट गईं।

जोनाथन स्टेमलर की टीम ने एक ऐसे रक्त के नमूने का परीक्षण किया जिसे निर्धारित मापदण्डों के आधार पर इकट्ठा कर प्रोसेस और स्टोर किया गया था। उन्होंने पाया कि सिर्फ एक दिन में ही रक्त में नाइट्रिक ऑक्साइड की मात्रा में 85 प्रतिशत तक की कमी हो जाती है। टिमोथी मैक्मोहन की टीम ने पाया कि रक्त संग्रह के 3 घंटे बाद से ही नाइट्रिक ऑक्साइड का क्षय होने लगता है। नाइट्रिक ऑक्साइड शरीर का महत्वपूर्ण संदेशवाहक अणु है।

ऊतक तक ऑक्सीजन पहुंचाना मुख्यतः रक्त के प्रवाह पर निर्भर करता है और शरीर में इस प्रक्रिया का सावधानी से नियंत्रण किया जाता है। लाल रक्त कोशिकाएं अपने परिवेश में ऑक्सीजन की मात्रा को महसूस कर सकती हैं। ऑक्सीजन की कमी हो, तो ये नाइट्रिक ऑक्साइड छोड़ती हैं जिससे रक्त वाहिनियां फैल जाती हैं और खून का प्रवाह बढ़ जाता है। संरक्षित रखे खून में नाइट्रिक ऑक्साइड की मात्रा कम होती है और यह प्रक्रिया नहीं हो पाती।

अच्छी खबर यह है कि खून में नाइट्रिक ऑक्साइड डाली जा सकती है। स्टेमलर ने पाया कि नाइट्रिक ऑक्साइड के घोल को लाल रक्त कोशिकाओं में मिलाकर ताज़े रक्त जैसी स्थिति प्राप्त की जा सकती है। कुत्तों पर इस तरह के खून के साथ किए गए प्रयोगों के सकारात्मक परिणाम मिले हैं।

स्टेमलर का मानना है कि ब्लड बैंक और डाक्टर्स को आपस में मिलकर इस प्रक्रिया को मानक और मान्य बनाने के प्रयास करने चाहिए। यद्यपि ऐसा करने के लिए अमरीकी खाद्य एवं औषधि प्रशासन की अनुमति आवश्यक होगी।

दूसरी टीम के मैक्मोहन का भी मानना है कि ऐसा कुछ करना चाहिए लेकिन उनकी टीम की प्राथमिकता है कि रक्त में होने वाले नाइट्रिक ऑक्साइड के नुकसान से ही बचने के उपाय किए जाएं। ***(स्रोत फीचर्स)***

राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद् (डी.एस.टी.) की एक परियोजना

स्रोत में छपे लेखों के विचार लेखकों के हैं। एकलव्य या एन.सी.एस.टी.सी. का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

12 अगस्त से पूर्व प्रकाशित न करें

Website : www.eklavya.in

स्रोत
विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

भुगतान मनीऑर्डर से या
एकलव्य के नाम ड्राफ्ट से करें
कतरन भी ज़रूर भेजें

संपादन एवं संचालन
एकलव्य, ई-10 शंकर नगर,
बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल - 462 016
फोन : (0755) 2550976, 2671017
ई-मेल : srote@eklavya.in

विज्ञान समाचार

सनबर्ड की चिपचिपी परेशानी

छोटी सनबर्ड (*नेक्टारिनिया ज़ाएलोनिका लिन*) के सिर पर चिपचिपा मकरंद और पराग कणों का मिश्रण चिपका हो, तो कई बार लगता है कि यह उनके लिए परेशानी का सबब है और वे त्रस्त हो जाती होंगी। शायद होती भी हैं जैसा कि हाल में प्रकाशित अवलोकनों से पता चलता है। ये सनबर्ड भारतीय मैन्ग्रोव वृक्ष ब्रुगिएरा जिम्नोराइज़ा और बी. सेक्सेन्गूला की एकमात्र परागणकर्ता हैं। करंट साइन्स के एक ताज़ा अंक में बी. नागराजन, एम. कृष्णनमूर्ति, सी. पान्डियाराजन और ए.मणिमेकलन ने सनबर्ड और इन वृक्षों के परागण के विस्तृत अवलोकनों का ब्यौरा दिया है।

ब्रुगिएरा के फूल बड़े-बड़े होते हैं और काफी समय तक खिले रहते हैं। हर फूल 40-60 माइक्रो लीटर मकरंद प्रतिदिन बनाता है। इसका मतलब है कि हर फूल अपनी पूरी ज़िन्दगी (15-20 दिन) में 16-20 लाख पराग कण बनाता है। जैसे ही सनबर्ड की चोंच इस फूल के पराग कोश के संपर्क में आती है, वैसे ही इस फूल से पराग कणों का सैलाब फूट पड़ता है। बार-बार फूलों के इस तरह से सम्पर्क में आने से सनबर्ड की चोंच में बहुत अधिक मात्रा में मकरंद का जमाव हो जाता है और इसमें ढेरों पराग कण फंस जाते हैं। पौधे का काम - यानी परागण - तो हो गया मगर इसके चलते शायद पक्षी की चोंच चिपचिपी हो जाती है। तभी हर यात्रा के बाद सनबर्ड इसी चिपचिपे पराग कण युक्त मकरंद को निकालने और अपनी चोंच को साफ करने में काफी वक्त - 30 सेकण्ड से एक मिनिट तक - लगाती है।

सनबर्ड अपनी छाती पर चिपके मकरंद और पराग कणों को निकालने के लिए चोंच का इस्तेमाल करती है और फिर चोंच को साफ करने के लिए पैरों की उंगलियों का। सिर को साफ करने के लिए वह उसे पेड़ की टहनी से जमकर रगड़ती है। नागराजन व साथियों ने पाया कि सनबर्ड सिर को रगड़ने के लिए पेड़ की टहनी का एक निश्चित हिस्सा चुन लेती है, जिसका इस्तेमाल वह रोज़ दो-तीन बार परागण-यात्रा के बाद करती है। इससे ऐसा लगता है कि सनबर्ड के पास स्थानों को पहचानने की क्षमता है। यदि वह इस चिन्हित सफाई स्थल पर न जाए, तो मकरंद और पराग उसकी चोंच में फंसकर जीभ को बाधित कर देते हैं। सनबर्ड इससे परेशान रहती है, इसलिए अपनी जीभ भी बार-बार साफ करती नज़र आती है। ***(स्रोत फीचर्स)***

राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद् (डी.एस.टी.) की एक परियोजना

स्रोत में छपे लेखों के विचार लेखकों के हैं। एकलव्य या एन.सी.एस.टी.सी. का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

15 अगस्त से पूर्व प्रकाशित न करें

Website : www.eklavya.in

स्रोत
विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स

भुगतान मनीऑर्डर से या
एकलव्य के नाम ड्राफ्ट से करें
कतरन भी ज़रूर भेजें

संपादन एवं संचालन
एकलव्य, ई-10 शंकर नगर,
बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल - 462 016
फोन : (0755) 2550976, 2671017
ई-मेल : srote@eklavya.in

खानपान

दुनिया का सर्वाधिक गंधवाला मसाला

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

तमिल में एक मशहूर मुहावरा है 'पेरुंगायम वैठा पांडम' अर्थात हींग की डिबिया। इसकी विशेषता यह होती है कि मसाला खत्म होने के बाद भी गंध रह जाती है। यह मुहावरा लगभग वही बात व्यक्त करता है जो 'रस्सी जल गई मगर बल नहीं गए' में है। हींग हमारे भोजन व औषधि का एक प्रमुख घटक रही है। और अब इसी हींग का एक नया उपयोग बताया जा रहा है - कि यह परजीवियों और रोगकारकों का सफाया करके पौधों की वृद्धि को बढ़ावा देती है।

भारतीय भोजन के बारे में डॉ. टी.के. अचया की पुस्तक 'इण्डियन फूड - ए हिस्टॉरिकल कंपेनियन' में बताया गया है कि प्राचीन काल से ही हींग का आयात अफगानिस्तान से किया जाता रहा है। हींग वैदिक काल में ज्ञात थी। महाभारत में एक पिकनिक के दौरान मांस को काली मिर्च, सेंधा नमक, अनारदाना, नींबू और हींग में पकाने का वर्णन आता है।

सुगंधित गोंद

फेरुला कुल के तीन पौधों की जड़ों से निकलने वाला यह सुगंधित गोंद रेज़िननुमा होता है। फेरुला कुल में ही गाजर भी आती है। हींग दो किस्म की होती है - एक पानी में घुलनशील होती है जबकि दूसरी तेल में।

डॉ. चिप रोसेटी इसे 'दुनिया का सर्वाधिक गंधवाला मसाला' कहते हैं। सऊदी एरेम्को वर्ल्ड के जुलाई-अगस्त 2009 के अंक में वे बताते हैं कि किसान पौधे के आसपास की मिट्टी हटाकर उसकी मोटी गाजरनुमा जड़ के ऊपरी हिस्से में एक चीरा लगा देते हैं। इस चीरे लगे स्थान से अगले करीब तीन महीनों तक एक दूधिया रेज़िन निकलता रहता है। इस अवधि में लगभग एक किलोग्राम रेज़िन निकलता है। हवा के संपर्क में आकर यह सख्त हो जाता है और कत्थई पड़ने लगता है।

मुख्य घटक

इसकी तेज़ गंध का स्रोत क्या है? गंध का स्रोत सल्फाइड नामक यौगिक हैं। इनमें से एक तो वही है जो हाई स्कूल केमेस्ट्री की प्रयोगशाला में किप्स उपकरण से निकलता है - हाइड्रोजन सल्फाइड या एचटूएस।

हींग के मुख्य घटक (2-ब्यूटाइल 1-प्रोपेनिल डाईसल्फाइड) की गंध तो इतनी तेज़ होती है कि युरोपीय लोग इसे एसाफेटीडा कहते हैं। फारसी में एसा का मतलब होता है रेज़िन और लैटिन में फेटीडा मतलब गंधयुक्त। एसाफेटीडा शब्द सबसे पहले इतालवी लोगों ने प्रचलित किया था। और भी ज़्यादा रंगीन नाम तो 'डेविल्स डंग' यानी शैतान की विष्ठा है - जो इसके रंग और आकार दोनों को समेटता है।

फेरुला एसाफेटीडा भारत में नहीं उगाया जाता। यह अफगानिस्तान, ईरान, तुर्कमेनिस्तान और मध्य एशिया क्षेत्र का वासी है।

ज़बर्दस्त निर्यात

इस क्षेत्र से इस गोंद का निर्यात सदियों से दुनिया भर में होता आया है। इसका निर्यात मसाले के रूप में भी होता है और औषधि के रूप में भी। रोसेटी बताते हैं कि अफगानिस्तान के हेरात नाम स्थान से मात्र एक व्यापारी से भारत 2 टन हींग खरीदता है। रोसेटी बताते हैं कि जब उन्होंने काहिरा में हींग खरीदी तो उसकी गंध खाद और अत्यधिक

राष्ट्रीय विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संचार परिषद् (डी.एस.टी.) की एक परियोजना
स्रोत में छपे लेखों के विचार लेखकों के हैं। एकलव्य या एन.सी.एस.टी.सी. का इनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

पकाए गए पत्ता गोभी की मिली-जुली गंध जैसी थी। मगर जब उन्होंने इसे तेल में डालकर गर्म किया तो एक लज़ीज़, खुशनुमा गंध निकलने लगी, जिसने प्याज़ और लहसून की याद दिला दी। प्याज़ और लहसून में अपेक्षाकृत बेहतर खूशबू वाले डाईएलाइल सल्फाइड्स पाए जाते हैं। इनका उपयोग सीज़निंग और शोरबों में बहुतायत से किया जाता है।

हींग का व्यापार हेरात से उत्तर-पश्चिम की ओर ईरान में मसहाद की ओर बढ़ता है और वहां से यह मशहूर रेशम मार्ग से जुड़ जाता है। रेशम मार्ग मंगोलिया और मध्य एशिया से कैस्पियन सागर के तट तथा तुर्की से होकर भूमध्यसागर क्षेत्र तक फैला हुआ था।

इस तरह से रेशम मार्ग मसाला मार्ग भी था। एक ओर तो यह गंधयुक्त गोंद पश्चिम की तरफ युरोप पहुंचा, वहीं पूर्व की ओर मुगल भारत तक भी पहुंचा और भारतीय पकवान पहले से ज़्यादा ज़ायकेदार हो गए।

यह अस्वाभाविक नहीं था कि इस गोंद को औषधीय गुणों की खान भी माना गया। इसका सबसे आम उपयोग अपच और पेट फूलने के संदर्भ में किया जाता है। आज भी शिशु के पेट पर नाभि के आसपास हींग मली जाती है। माना जाता है कि इससे पेट में फंसी वायु निकल जाएगी और पाचन में मदद मिलेगी। शायद यही कारण है कि इसे दालों और बीन्स (सेमनुमा चीज़ों) में डाला जाता है। दालों और बीन्स में कार्बोनिक एनहाइड्रेस नामक एक एंज़ाइम पाया जाता है जो गैस बनाने में मदद करता है। और हींग डालने से इस प्रभाव से राहत मिलती है, कम से कम कहा तो यही जाता है।

अन्य मान्यताएं

वास्तव में हींग के औषधीय व स्वास्थ्य सम्बंधी असर को लेकर यूनानी व आयुर्वेद चिकित्सा पद्धतियों में कई मान्यताएं हैं जिनकी जांच की जानी चाहिए। मटेरिया मेडिका में कहा गया है कि हींग घेंघा (आयोडीन चयापचय), ब्रोंकाइटिस (संक्रमण-रोधी?), गंजेपन (फॉलिकल प्रेरक?) में उपयोगी है। वैसे मुझे अपने सिर को देखकर समझ में नहीं आता कि हींग गंजेपन से निपटने में कैसे मदद करती है। कहा तो यह भी जाता है कि यह स्त्रियों में मासिक स्राव शुरू करने में सहायक होती है या, दूसरे शब्दों में, हींग हार्मोन के नियमन में सहायक है।

वाष्पशील तेलों के अलावा हींग के अन्य घटकों में कुमेरिन्स पाए जाते हैं। इनमें अम्बेलीफेरोन, एसारेनिनोटैनोल्स और फेरुलिक एसिड प्रमुख हैं। हम इन पदार्थों के जैव रासायनिक गुणों को कुछ हद तक समझते हैं। इनमें से कुछ पदार्थ तो कीटनाशकों के रूप में काम करते हैं और कृमियों की वृद्धि को अस्त-व्यस्त करते हैं।

फेरुलिक एसिड फफूंद-रोधी के रूप में काम करता है। इसके अलावा यह भी पता चला है कि यह वनस्पतियों के पोषण संतुलन में गड़बड़ी पैदा करता है और वनस्पति हारमोन्स के असर को रोकता है। अर्थात इन अलग-अलग प्रभावों का एक संतुलन होता होगा जिससे पौधे को लाभ प्राप्त होता होगा।

कोडुमुडी के एक किसान श्री चेल्लामुतु कहते हैं कि यदि वे सिंचाई की नाली में हींग की एक थैली रख दें, तो उनके खेतों में सब्ज़ियों की वृद्धि अच्छी होती है और वे संक्रमण मुक्त रहती हैं। उनसे बात करने पर पता चला कि पानी में हींग मिलाने से इल्लियों का सफाया हो जाता है और इससे पौधों की वृद्धि बढ़िया होती है।

यह बहुत खुशी की बात है कि कोयंबटूर के पादप सुरक्षा अध्ययन केंद्र ने चेल्लामुतु के इन दावों के अध्ययन का एक कार्यक्रम हाथ में लिया है। ***(स्रोत फीचर्स)***